अरे यायावर, रहूँगा याद!

कुमार प्रशांत

पता नहीं, विनोबा होते तो उन्हें कैसा लगता कि कोई कहे कि ज़माना उन्हें याद रखे! वे तो अपना सब कुछ समेट कर, किया-धरा दूसरों को सौंप कर ओट हो जाने की साधना में लगे साधक थे। जब उनका भूदान-ग्रामदान का आंदोलन अपूर्व मोहकता से चलते हुए तेज़ी से बढ़ रहा था तब किसी ने यह कह कर खिल्ली उड़ाई थी कि यह सब बोगस है। विनोबा को ऊसर-परती-जंगली ज़मीनें दे कर बेवकूफ़ बनाया जा रहा है। किसी ने उनसे ही पूछ लिया कि ऐसे आरोपों पर क्या कहना है आपको, तो अधखुली आँखों से थोड़ी देर ताकने के बाद वे हँसे, और बोले : बी से बाबा, बी से भूदान और बी से बोगस! 'मतलब भूदान का बाबा का सारा काम बोगस!' ताली बजा कर हाथ झाड़े उन्होंने और आगे को सिधार गये।

अपने जीवन के सबसे रचनात्मक और ऊर्जावान अध्याय को ऐसी निस्पृहता से ख़ारिज कर देना, कोई दावा या कोई सफ़ाई न देना और आगे अपने काम पर लग जाना— बड़ा गहरा आंतरिक बल माँगता है। भीतर गहरी सम्पन्नता भरी हो तभी बाहरी विपन्नता को आप ऐसे झेल पाते हैं। कहीं किसी ने पूछा : सारी बेकार-बंजर ज़मीनें दे कर लोग आपको मूर्ख बना रहे हैं, तो अपने सहज हास्य के साथ यह मार्मिक बात पूछ ली उन्होंने : भाई, ज़मीन भी कोई बेकार होती है?
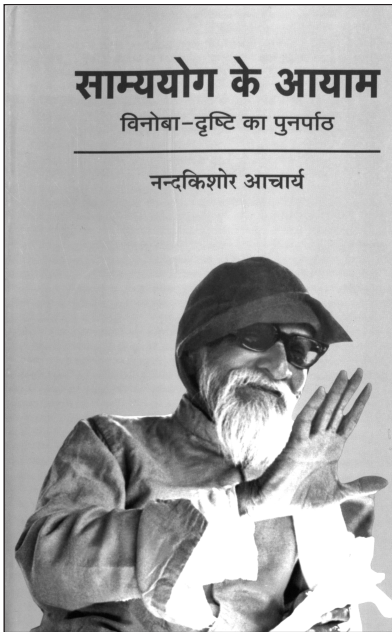
साम्ययोग के आयाम : विनोबा दृष्टि का पुनर्पाठ
नंदकिशोर आचार्य
प्राकृत भारती अकादमी, 13-ए, गुरुनानक पथ, मेन मालवीय नगर, जयपुर-302017
मूल्य : 180, पृष्ठ : 104

भूदान के उनके आंदोलन से मिली कुल चालीस लाख एकड़ ज़मीन को तराज़ू के एक पलड़े पर रखें हम, और क़त्ल व क़ानून से निकाली या जुटाई गयी तमाम ज़मीन को दूसरे पलड़े पर रखें— तो भी विनोबा की बराबरी नहीं कर पाएगा कोई! तमाम भ्रष्ट प्रशासन-तंत्र, नक़ली राजनीतिक प्रतिबद्धता तथा सर्वोदय के कार्यकर्ताओं की अकुशलतायुक्त मूढ़ता के बाद भी चालीस लाख एकड़ में से अठारह लाख एकड़ ज़मीन का वितरण तत्काल हुआ। आज लाखों परिवार हैं जिनका अस्तित्व भूदान से मिली ज़मीन पर टिका हुआ है और इन भूदान-परिवार के नब्बे फ़ीसदी सदस्य दलित-हरिजन-आदिवासी-महिलाएँ हैं; और ये सभी वे हैं जिनके पास पीढ़ियों से कभी अपनी ज़मीन नहीं रही थी। और, अपने बाप-दादाओं द्वारा भूदान में दी उसी बेकार-बंजर ज़मीन को येनकेन-प्रकारेण फिर से अपने क़ब्ज़े में करने का दाँव-पेच वे लोग चल रहे हैं जो दाता परिवारों के नये उत्तराधिकारी हैं। सरकारी भूदान समितियों के अधिकांश अधिकारीगण भी और सर्वोदय के कतिपय लोग भी उन्हीं ज़मीनों का सौदा कर कमाई करने में लगे हैं। इसलिए मुझे याद आती है विनोबा की वह मधुर-सी, छोटी टिप्पणी : भाई, ज़मीन भी कोई बेकार होती है!

नंदकिशोर आचार्य ने अपनी ताज़ा किताब *साम्ययोग के आयाम : विनोबा-दृष्टि का पुनर्पाठ* में इसी विनोबा को कई तरह से समझने की कोशिश की है। विनोबा अपने दर्शन में, उसके विश्लेषण में और उन सबको धरती पर उतारने में इतने सरल हैं कि हमारा जटिल मन अक्सर उलझ जाता है। विनोबा वेदांती होते तो उनसे निबटना आसान होता; प्रवचनकार होते तो हम उन्हें आसानी से उनकी जगह पर बिठा देते; अपना मठ बना कर शिष्य परम्परा चलाने वाले कोई शंकराचार्य होते तो भी हमें उनसे परेशानी नहीं होती। लेकिन परेशानी यह है कि विनोबा यह सब हैं लेकिन इससे आगे भी हैं; और वे उस क्षेत्र में क़दम रखते हैं जो क्रांति का या समाज परिवर्तन का क्षेत्र है, और वहाँ वे दावा यह करते हैं कि वे क्रांति की अवधारणा में ही क्रांति करने की कोशिश में हैं। जानकारों ने उनके इस दावे की खिल्ली भी उड़ाई और उन्हें जड़ से ख़ारिज भी किया है, लेकिन सबकी हर तरह की कोशिशों के बावजूद विनोबा उस जमात से रत्ती भर भी खिसकते नहीं हैं जो क्रांतिकारियों की जमात है। और, वे आपादमस्तक भारतीय हैं जिसे सारा विश्व अपना परिवार लगता है। वे गाँधी के बाद भारतीयता और भारतीय मेधा के सबसे उज्ज्वल पुष्प हैं।

हमें इस बात पर हैरान होना चाहिए कि एक ऐसा व्यक्ति जो सामाजिक जंजालों से एकदम बाहर रहा है, समाज-परिवार-सरकार का त्रिभुज जिसे कभी बाँध नहीं पाया, वही इन सबका इतना तलस्पर्शी विश्लेषण कैसे कर पाया! उस विश्लेषण के आधार पर उसने समाज परिवर्तन का एक पूरा शास्त्र गढ़ा और फिर उस शास्त्र के आधार पर जन-आंदोलन की पूरी रणनीति बुनी और उसे सक्रियता से समाज में साकार भी कर दिया। जयप्रकाश नारायण ने इसे ही पहचाना था और कहा था : अगर विनोबा नहीं होते तो हम गाँधी के बाद गाँधी का इतना ही काम कर पाते कि दो अक्तूबर और तीस

मृत्यु से पहले संथारा करते हुए विनोबा

कहीं किसी ने पूछा : सारी बेकार-बंजर ज़मीनें दे कर लोग आपको मूर्ख बना रहे हैं, तो अपने सहज हास्य के साथ यह मार्मिक बात पूछ ली उन्होंने : भाई, ज़मीन भी कोई बेकार होती है? भूदान से मिली कुल चालीस लाख एकड़ ज़मीन को तराजू के एक पलड़े पर रखें हम, और क़त्ल व क़ानून से निकाली या जुटाई गयी तमाम ज़मीन को दूसरे पलड़े पर रखें— तो भी विनोबा की बराबरी नहीं कर पाएगा कोई!

जनवरी को चर्खा कातते, रामधुन और प्रार्थना करते! गाँधी की क्रांति का सामाजिक संदर्भ और उससे जुड़ा क्रांतिकारी कार्यक्रम हमें विनोबा से मिला तो आज हम गाँधी की क्रांति के सूत्र समझ भी पा रहे हैं और उसे समझा भी पा रहे हैं।

महात्मा गाँधी के पूरे आंदोलन को आप खँगाल जाएँ तो विनोबा कहीं कुछ ख़ास करते नहीं मिलेंगे आपको। वे गाँधी के अग्रिम सिपहसालारों में नहीं हैं, वे गाँधी के तीखे आलोचकों में भी नहीं हैं। वे गाँधी के आसपास, यहाँ-वहाँ की गतिविधियों में मिलते तो हैं लेकिन कुछ ख़ास करते नज़र नहीं आते हैं। व्यक्तिगत साधना आदि की कुछ बातें यत्र तत्र मिलती हैं और गाँधी उनसे अपनी उलझनों पर सलाह-मशविरा करते हैं। यह जानकारी भी मिलती है, लेकिन विनोबा कहीं किसी मोर्चे पर गाँधी के सिपाही बने करतब करते नहीं मिलते हैं। और तो और, कांग्रेस के सबसे मोहक व दिग्गज नेता जवाहरलाल नेहरू से विनोबा की पहली प्रत्यक्ष मुलाक़ात तब होती है जब गाँधी की हत्या के बाद सेवाग्राम में विनोबा वह सम्मेलन बुलाते हैं जिसे अधूरा ही छोड़ कर गाँधी सिधारे थे। गाँधी के लोगों से अपरिचय की यह पराकाष्ठा ही कही जाएगी।

उनकी यह असंलग्नता इतनी गहन है कि जब गाँधी व्यक्तिगत सत्याग्रह का आह्वान करते हैं और कांग्रेस में इसकी ख़ासी चर्चा है कि गाँधी किसे पहला सत्याग्रही चुनते हैं, क्योंकि उसकी दावेदारी करने वाले चमकीले सितारे तब बहुत हैं, तब गाँधी अपने तहख़ाने से विनोबा को निकाल कर देश के सामने पेश करते हैं। वे ऐसा करते हैं तो उन्हें बाज़ाब्ता देश को बताना पड़ता है कि ये विनोबा हैं कौन और उनकी वे विशेषताएँ क्या हैं जिनके कारण उन्हें पहला व्यक्तिगत सत्याग्रही चुना गया है। विनोबा अपनी उस ज़िम्मेदारी को गाँधी की अपेक्षानुसार निभाते हैं, गिरफ़्तार होते हैं और धुले की जेल में बंद किये जाते हैं। वहाँ उनके साथी क़ैदी उनसे आग्रह भी क्या करते हैं कि वे *गीता* का अपना भाष्य उन्हें सुनाएँ। विनोबा राज़ी हो जाते हैं और 21 फ़रवरी, 1932 से 19 जून, 1932 तक, लगातार हर रविवार को अपनी मातृभाषा मराठी में गीता का अपना भाष्य साथी क़ैदियों के लिए प्रस्तुत करते हैं जिसे साने गुरुजी लिखते चले जाते हैं। इस तरह तैयार होता है गीता प्रवचन जो आज तक गीता के भाष्य का अप्रतिम मानक बना हुआ है।

यहाँ दो बातें ध्यान में रखने की हैं— यह प्रवचन किसी लाइब्रेरी में बैठ कर, शोधग्रंथों की छाया में तैयार नहीं हुआ। बल्कि कारागार में, उसके सारे नियमों का पालन करते हुए, लगातार बोला गया है। गीता का ऐसा कोई दूसरा भाष्य तैयार हुआ हो तो मेरी जानकारी में नहीं है। व्यवस्थित तैयारी के साथ एक विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ लिखने में और कारागार में क़ैदी साथियों के बीच बोलने में जो फ़र्क़ है, वह

हम जानते हैं। इसके साथ हम यह भी ध्यान में रखें कि यह सारा कुछ मराठी में कहा गया। गाँधी अपना *हिंद-स्वराज्य* पानी के जहाज़ से इंग्लैण्ड से दक्षिण अफ्रीका जाते हुए, खुले पन्नों पर, सीधे हाथ से गुजराती में लिखते हैं। विनोबा मराठी में बोल कर ऐसा अप्रतिम भाष्य लिखवा डालते हैं जिसे भाषा के लिहाज़ से भी मराठी में मानक माना जाता है। यह विनोबा की आंतरिक बनावट है। लेकिन 30 जनवरी, 1948 को हम महात्मा गाँधी को गोली मार कर गिराते हैं तो जैसे उनकी भस्म से विनोबा एक नये संकल्प और त्वरा के साथ प्रकट होते हैं और देखते-देखते भारतीय मानस पर छा जाते हैं। राजनीतिक सत्ता की चमक के साथ चमकने और अस्त होने वाले सितारे हमने कई देखे हैं, लेकिन अपने विचार-बल और लक्ष्य-साधना के बल पर देश का आसमान छा लेने वाला ऐसा दूसरा कोई व्यक्ति नहीं मिलता।

विनोबा का इतना परिचय इसलिए ज़रूरी था कि नंदकिशोर आचार्य जब हमारे सामने विनोबा का पुनर्पाठ रख रहे हों तो हमें मूल पाठ का थोड़ा तो पता हो! विनोबा के बारे में हमें इतना कम इसलिए पता है कि वे हमारे जीवन में हलचल मचाने वाले कभी नहीं रहे। उन्होंने खुद कहा भी है कि मैं सड़क किनारे लगा हुआ वह साइनबोर्ड हूँ जो बताता तो है कि आगे मत जाना, सड़क टूटी हुई है लेकिन वहाँ से आगे जाने वाले को वह कभी रोकता नहीं है! ख़बरदार करना मेरा काम है, सुनना-समझना तुम्हारा! इसलिए उन्हें सत्याग्रह क़बूल करना पड़ता है लेकिन वह उन्हें रुचता नहीं है। इसलिए उनके आंदोलन में कभी जुलूस-धरना-प्रदर्शन जैसे रास्ते नहीं अपनाए जाते, किसी माँग को लेकर उपवास की अनुमति उनसे कभी मिलती नहीं है। उन्होंने किसी सार्वजनिक सवाल पर अनशन का हथियार इस्तेमाल किया हो तो मेरी जानकारी में ऐसे दो ही प्रसंग बने— एक, जब देश में भाषाई दंगे शुरू हुए थे और दूसरा तब जब उन्होंने गो-हत्या बंदी की माँग उठाई थी। जब तूफ़ान मचलता है तब हम उसे ख़बर मानते हैं, हल्का-मधुर समीर कभी ख़बर बनता है क्या! ऐसा ही विनोबा के साथ हुआ; और यह ख़ास तौर पर उजागर हुआ क्योंकि वे पिछली शताब्दी में, सर्वाधिक अशांति के जनक गाँधी के बाद, उनका ही उत्तराधिकारी सँभालते हुए सामने आये, और क्रांति की इस अपूर्व कोशिश में उन्हें अविचलित साथ मिला जयप्रकाश नारायण का जो कम-से-कम थे तो शांत ज्वालामुखी ही।

नंदकिशोर आचार्य का यह विनोबा-विश्लेषण इसलिए ध्यान भी खींचता है और चुनौती भी देता है कि विनोबा के सामाजिक क्रांतिकारी स्वरूप का ऐसा विश्लेषण कम ही हुआ है। अगर गाँधी की छूटी हुई लाठी उन्होंने अपने कंधे पर न रखी होती तो उनकी ऐसी परख न हुई होती। किताब का परिचय देते हुए रामचंद्र प्रधान भी इस पहलू को इस तरह रेखांकित करते हैं : विनोबा की कीर्ति एक सिद्ध संत के रूप में ज़्यादा मान्य होने के कारण उनके आध्यात्मिक चिंतन पर ही ध्यान ज़्यादा केंद्रित रहा है। उनके सामाजिक चिंतन में भूदान से संबंधित लेखन पर ही लोगों का ध्यान अधिक आकर्षित हुआ है। इसलिए उनके सामाजिक-आर्थिक चिंतन पर समग्रता में कम विचार हुआ है। इस संदर्भ में नंदकिशोर आचार्य की नयी कृति अपनी अलग और विशिष्ट महत्ता रखती है।

नंदकिशोर आचार्य अपनी इस ज़िम्मेदारी के प्रति सचेत हैं। उनकी सुविधा यह है कि वे गाँधी या विनोबा या जयप्रकाश के आंदोलन के सिपाही नहीं हैं, विचार को विचार के स्तर पर समझने वाले बौद्धिक विश्लेषक हैं। किसी भी विचार की बारीक़-से-बारीक़, तर्कशुद्ध कताई को जब ज़मीन पर उतारने की चुनौती आती है तब ही उसकी असली क़ीमत और उसकी असली कसौटी होती है। विनोबा इसलिए ही गाँधी के उत्तराधिकारी बन सके कि वे ज़मीन पर उतरे और विचार को ज़मीन पर उतारने की जद्दोजहद की। इसी कारण वे अपने दौर के सबसे बड़े एक्टिविस्ट बन गये। चिंतक और एक्टिविस्ट का ऐसा मेल, जो गाँधी के बाद सम्भवतः लुप्त ही हो जाता, विनोबा ने ग़ज़ब की दृढ़ता से साधा और एक बार फिर से उस गाँधी-परम्परा को जीवित कर दिया। नंदकिशोरजी इसे हमारे

विनोबा यह कहते मिलते हैं : जैसे-जैसे प्रजा की शक्ति, योग्यता और ज्ञान बढ़ेगा, प्रजा में परस्पर-सहयोग का माद्दा बढ़ेगा, वैसे-वैसे सरकार की ज़रूरत कम होती जाएगी। फिर सरकार आज्ञा देने वाली नहीं, सलाह देने वाली संस्था बन जाएगी। इस तरह जैसे-जैसे जनता का नैतिक स्तर ऊपर उठेगा, वैसे-वैसे हुक़ूमत की, हुक़ूमत चलाने की शक्ति क्षीण होती जाएगी। आख़िर में तो हम यही आशा करते हैं कि हुक़ूमत मिट जाएगी।

समझने के लिए बहुत आसान बना देते हैं : जीवन के नियमों के इस निर्धारण में इस बात पर ध्यान देना ज़रूरी हो जाता है कि हम सभी अपूर्ण और विकासशील अस्तित्व हैं। इसलिए इन नियमों की भी दो कोटियाँ हो जाती हैं : हमारी वर्तमान वास्तविकता का नियम और हमारी सम्भावना का नियम, श्री अरविंद का विकासात्मक प्रकृति का प्रत्यय तथा गाँधी-विनोबा का स्वराज्य-प्रत्यय यहाँ एक हो जाते हैं। (पृ. 74)

इसे आधार मान कर वे जब विनोबा को टटोलते हैं तो उन्हें विनोबा यह कहते मिलते हैं : जैसे-जैसे प्रजा की शक्ति, योग्यता और ज्ञान बढ़ेगा, प्रजा में परस्पर-सहयोग का माद्दा बढ़ेगा, वैसे-वैसे सरकार की ज़रूरत कम होती जाएगी। फिर सरकार आज्ञा देने वाली नहीं, सलाह देने वाली संस्था बन जाएगी। इस तरह जैसे-जैसे जनता का नैतिक स्तर ऊपर उठेगा, वैसे-वैसे हुक़ूमत की, हुक़ूमत चलाने की शक्ति क्षीण होती जाएगी। आख़िर में तो हम यही आशा करते हैं कि हुक़ूमत मिट जाएगी। सर्वोदय के अंतिम आदर्श में हम शासन-मुक्त समाज की कल्पना करते हैं। फिर नंदकिशोरजी अपना यह सवाल ले कर विनोबा के पास जाते हैं कि शासन-मुक्त होने से क्या समाज व्यवस्थाहीन नहीं हो जाएगा? और विनोबा कहते हैं: सो बात नहीं! उसमें व्यवस्था तो रहेगी, पर वह गाँव-गाँव में बँटी रहेगी। उसमें दण्ड की आवश्यकता नहीं रहेगी। समाज में कुछ नैतिक विचार इतने मान्य होंगे कि वे समाज के आचरण में आये होंगे, छोटे-छोटे लड़कों को भी उसकी तालीम मिली होगी। ऐसे समाज में लोग ख़ुद नैतिक विचार को मान कर चलेंगे। वह समाज स्वशासित होगा। आज लाखों लोग चोरी नहीं करते हैं तो वह इसलिए नहीं कि चोरी के ख़िलाफ़ क़ानून है। क़ानून है तो ठीक ही है, पर लाखों लोग इसलिए चोरी नहीं करते हैं कि चोरी करना ग़लत है यह नैतिक विचार उन्हें मान्य है। नंदकिशोरजी विनोबा को और टटोलते हैं तो विनोबा यह कहते मिलते हैं : आज जिसके पास ज़्यादा संग्रह है, उसी को समाज में गौरव प्राप्त होता है, किंतु कल ऐसी स्थिति आएगी कि जिसके पास ज़्यादा संग्रह हो, उसकी अवस्था चोर जैसी मानी जाएगी। आगे विनोबा एक कहानी भी सुनाते हैं कि जब एक डाकू को सिकंदर के सम्मुख पेश किया गया और उस पर लूट-पाट का आरोप लगाया गया तो सिकंदर को जवाब देते हुए उस डाकू ने कहा कि वह तो वही काम कर रहा है, जो सिकंदर स्वयं करता है। फ़र्क़ केवल यह है कि सिकंदर सफल हो गया जबकि वह सफल नहीं हो सका।

समाज और व्यक्ति के अंतर्संबंधों को समझने और समझाने की कोशिश में लगे दार्शनिकों की कतार बहुत लम्बी है जिन्हें विनोबा के बरअक्स रख कर देखने की कोशिश नंदकिशोरजी ने भी की है। वे बताते हैं कि दार्शनिकों की इस लम्बी परम्परा में ही कहीं विनोबा भी आते हैं। महात्मा गाँधी

भी आते हैं और जयप्रकाश भी। लेकिन हमें यानी कि भारत को इस बात का गर्व होना चाहिए कि महात्मा गाँधी-विनोबा-जयप्रकाश की त्रयी इस परम्परा में तो आती है लेकिन यह त्रयी एक नयी परम्परा भी बनाती चलती है— समाज की चालक-शक्ति को बदलने की परम्परा! भय, दमन, लोभ और लाभ के आधार पर चलने वाले समाज को, अभय, सहयोग और अहिंसा की शक्ति से चलने वाला समाज बनाना! और यह त्रयी इस बात को किसी दार्शनिक सवाल की तरह नहीं लेती है बल्कि इन प्रेरणाओं से बनने वाले समाज को तैयार करने में ताउम्र जुटी मिलती है। 30 जनवरी, 1948 को गाँधी को जो तीन गोलियाँ हमने मारीं, दरअसल वह किसी व्यक्ति को मारने की बात नहीं थी, बल्कि वह तो संगठित धर्म, संगठित राज्य और संगठित बाज़ार का सीधा हमला था कि कहीं समाज में सच ही हमारा कोई विकल्प खड़ा न हो जाए। विनोबा इसे पहचान सके और गुरुदक्षिणा में समाज में उतरे। नक्सली गतिविधियों से घिरे आंध्र प्रदेश में 'भूमिहीन को ज़मीन दे दो भाई' जैसी भूमिका से जो भूदान शुरू हुआ वह ग्राम-स्वराज्य की भव्यतर कल्पना तक पहुँचा— तो इसमें विनोबा की यही प्रचण्ड प्रतिबद्धता काम करती मिलती है। वे अहिंसक समाज का चित्र ही खड़ा नहीं करते, बल्कि अहिंसक समाज बनेगा कैसे, किनके द्वारा, उसका संगठन कैसा होगा और वह किन कार्यक्रमों में से निष्पन्न होगा, इन सबकी शोध करते हुए वे पैदल दो बार सारा देश नाप जाते हैं। क्रांति की किसी कल्पना को व्यावहारिक स्वरूप देने की ऐसी कोशिश का दूसरा उदाहरण खोजे नहीं मिलेगा।

नंदकिशोरजी तब विनोबा को उनके असली स्वरूप में पकड़ते हैं जब वे राष्ट्रवाद और अंतर्राष्ट्रीयतावाद की गुत्थी को सुलझाने की कोशिश करते हैं— विनोबा का विचार अंतर्राष्ट्रीयतावाद को मान्यता देता है पर उसका आधार-सिद्धांत सह-अस्तित्व; बल्कि सहकार है और इसलिए वह किसी राष्ट्रीय सीमा को स्वीकार नहीं करते। राष्ट्रवाद, विनोबा की दृष्टि में, छोटी बात है, क्योंकि वह वस्तुनिष्ठ नहीं है। सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा का ज़िक्र करते हुए वे कहते हैं कि हिंदोस्ताँ हमारा होने के कारण अच्छा लगता है और तब पूछते हैं कि यदि हम किसी दूसरे देश में पैदा हुए होते तब भी क्या हिंदोस्ताँ हमें सबसे अच्छा लगता! फिर विनोबा कहते हैं : विश्वमानव इस तरह नहीं बोलेगा। वह अपने को किसी देश का निवासी नहीं मानेगा। और फिर विनोबा जयहिंद की जगह जय-जगत का मंत्र देते हैं— मुझे इसमें ज़रा भी संदेह नहीं कि भविष्य में सारे विश्व की एक उत्तम पंचायत बनेगी। एक ओर होगी विश्व-पंचायत, विश्व-समिति तो दूसरी ओर होगी ग्राम-पंचायत, ग्राम-समिति। इनके बीच जो प्रांत और राष्ट्र रहेंगे, धीरे-धीरे उनका महत्त्व घटता जाएगा। एक बाजू ग्राम-स्वराज्य की योजना होगी, तो दूसरी बाजू विश्व-स्वराज्य की योजना! जैसे-जैसे विज्ञान बढ़ता जाएगा, वैसे-वैसे छोटे-छोटे ज़िले, प्रांत और देश हटते जाएँगे। (पृ. 80-81) और नंदकिशोरजी हमारा ध्यान इस तरफ़ खींचते हैं कि इस विश्लेषण में विनोबा ने कहीं भी विश्व-सरकार जैसे किसी पद का इस्तेमाल नहीं किया है।

साम्ययोग की प्रक्रिया

अध्यात्म की वैज्ञानिकता का अर्थ अपेक्षाकृत छोटा है, लेकिन बड़े महत्त्व का है। विनोबा हमारे बौद्धिक जगत में उपस्थित रहें, यह ज़रूरी है तो इसलिए कि उसे छोड़ कर आगे का रास्ता मिलता नहीं है। मुझे नंदकिशोर आचार्य के इस पुनर्पाठ की सबसे बड़ी देन यही लगती है कि हम इसका छोर पकड़ कर विनोबा तक पहुँचें। विनोबा के चिंतन की और उससे निकले समाज परिवर्तन की सबसे मौलिक बात यह है कि वह किसी प्रतिक्रिया में से निकली नहीं है। विनोबा के शब्द में कहूँ— अक्षोभ-वृत्ति! मानवीय चेतना के सहज विकास में से यह सारा दर्शन निकला है, और काम करते-करते, चलते-चलते विकसित हुआ है। व्यक्ति, समाज और सामाजिकता का ऐसा परिपाक गाँधी से शुरू हो कर जब विनोबा तक पहुँचता है, तो विनोबा उसे समृद्धतर कर हमें वापस सौंपते हैं। यह पहचानना कितना

वैभवपूर्ण है कि विनोबा की पूरी सोच में, उनके पूरे कार्यक्रम में और ग्राम-स्वराज्य के उनके सारे आंदोलन में द्वेष, घृणा, स्पर्धा, बदला लेना, सबक़ सिखाना जैसी सामान्य मानवीय वृत्तियों का अभाव नहीं है, बल्कि वे हैं ही नहीं। जो है ही नहीं उसकी खोज करेंगे तो हाथ कुछ आएगा क्या! इसलिए विनोबा जैसे हैं वैसे ही हम उन्हें देखें-समझें और परखें; और उनसे अपने लिए आगे का कोई पाथेय मिलता हो तो वह ले के चलें। लेकिन पाथेय की ज़रूरत उसे ही पड़ती है न कि जो सफ़र पर हो। जिसने कोई सफ़र किया ही नहीं याकि जिसे कोई सफ़र करना ही नहीं है, उसके लिए विनोबा किसी मतलब के नहीं होंगे।

विनोबा की सबसे बड़ी ताक़त उनकी अतिशय सरल अभिव्यक्ति में है। ऐसा तब भी होता है जब आपके विचार आपकी आस्था की अभिव्यक्ति करते हैं। ऐसा न हो तो शब्दों-बातों-तर्कों का बड़ा घटाटोप तो हम खड़ा कर लेते हैं लेकिन बात कहीं पहुँचती नहीं है। ऐसी जटिलता इस पुनर्पाठ को भी घेरती है। इसलिए भी ज़रूरी है कि हम इस पुनर्पाठ की सीढ़ी से होते हुए सीधे विनोबा तक पहुँचे क्योंकि अभी वे हमसे और हमारे काल से इतनी दूर गये नहीं हैं कि बरास्ते उन तक पहुँचने की मजबूरी हो। और वे हमारे बीच से गये भी तो इस तरह गये कि मानो कहते-पूछते गये कि अरे यायावर, रहूँगा याद ?

कमल नयन चौबे की इस सामयिक और महत्त्वपूर्ण कृति में वन अधिकार क़ानून बनने और लागू होने का व्यापक विवरण पहली बार पेश किया गया है। कमल उस संदर्भ का परिष्कृत विश्लेषण करते हैं जिसके तहत हमें यह क़ानून समझना चाहिए। उन्होंने इस क़ानून से जुड़े कुछ अहम सवालों की गहराई से विवेचना की है। कमल के तर्क महज़ सैद्धांतिक नहीं हैं। कई जगह वे गहन अनुभवसिद्ध शोध पर आधारित हैं। दरअसल उनकी यह रचना बहु-स्थानिक अनुसंधान का बेहतरीन उदाहरण है।